श्रीमद्भागवतम्

स्कन्ध 2

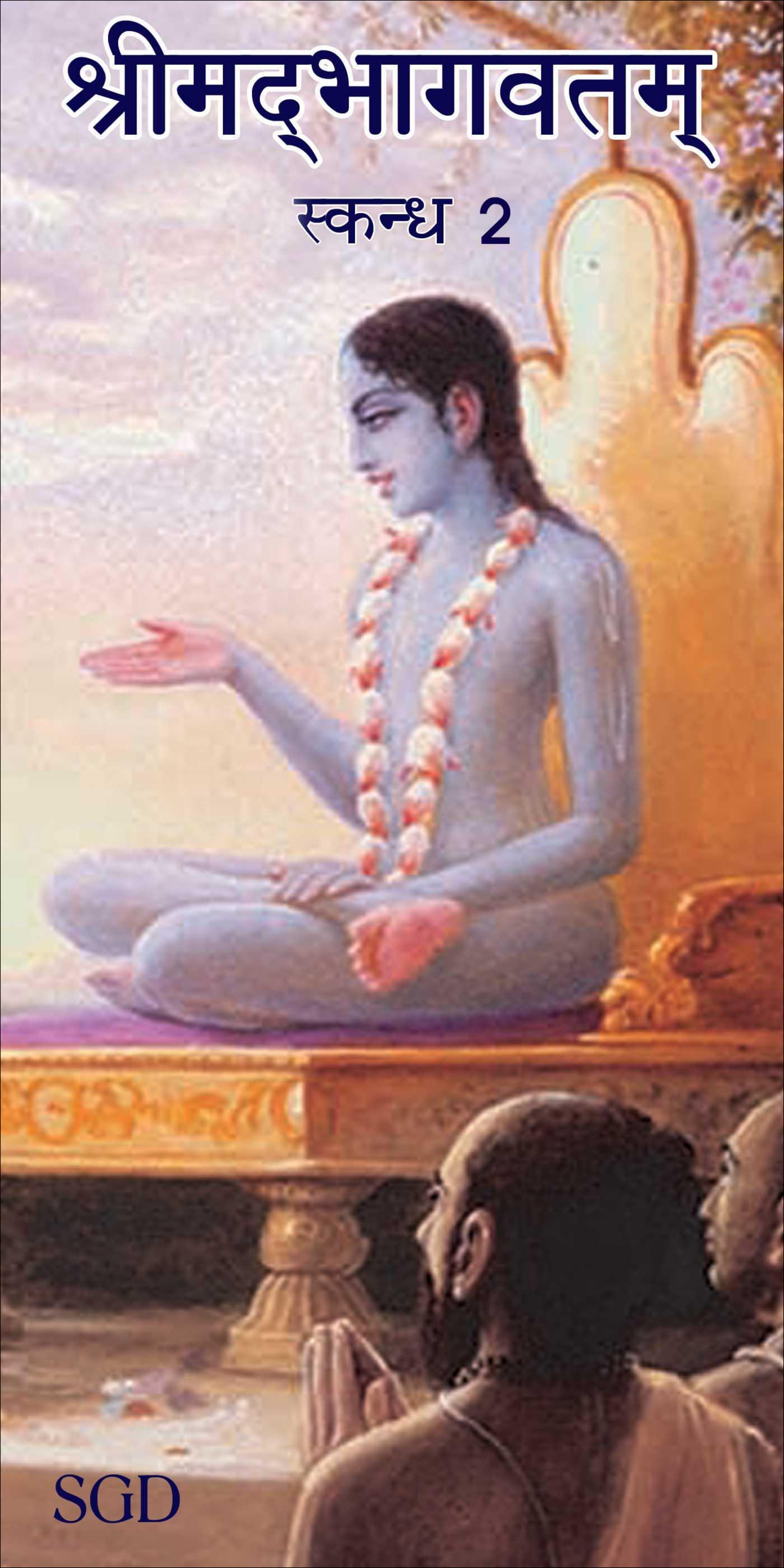

SGD

श्रीमद् भागवत पुराण

अध्याय 6

पुरुष सूक्त की पुष्टि

श्रीलगुरुदेव

श्लोक 1: ब्रह्माजी ने कहा : विराट पुरुष का मुख वाणी का उद्गम-विन्दु है और उसका नियामक देव अग्नि है। उनकी त्वचा तथा अन्य छह स्तर (आवरण) वैदिक मन्त्रों के उद्गम-विन्दु हैं और उनकी जीभ देवताओं, पितरों तथा सामान्यजनों को अर्पित करनेवाले विभिन्न खाद्यों तथा व्यंजनों (रसों) का उद्गम है।

श्लोक 2: उनके दोनों नथुने हमारे श्वास के तथा अन्य सभी प्रकार के वायु के जनन-केन्द्र हैं; उनकी घ्राण शक्ति से अश्विनीकुमार तथा समस्त प्रकार की जड़ी-बूटियाँ उत्पन्न होती हैं और उनकी श्वास-शक्ति से विभिन्न प्रकार की सुगन्धियाँ उत्पन्न होती हैं।

श्लोक 3: उनके नेत्र सभी प्रकार के रूपों के उत्पत्ति-केन्द्र हैं। वे चमकते हैं तथा प्रकाशित करते हैं। उनकी पुतलियाँ (नेत्र-गोलक) सूर्य तथा दैवी नक्षत्रों की भाँति हैं। उनके कान सभी दिशाओं में सुनते हैं और

समस्त वेदों को ग्रहण करनेवाले हैं। उनकी श्रवणेन्द्रिय आकाश तथा समस्त प्रकार की ध्वनियों की उद्गम है।

श्लोक 4: उनके शरीर की ऊपरी सतह सभी वस्तुओं के सार एवं समस्त शुभ अवसरों की जन्म-स्थली है। उनकी त्वचा गतिशील वायु की भाँति सभी प्रकार के स्पर्श का उद्गम तथा समस्त प्रकार के यज्ञों को सम्पन्न करने का स्थान है।

श्लोक 5: उनके शरीर के रोम समस्त प्रकार की वनस्पति के कारण

हैं, विशेष रूप से उन वृक्षों के, जो यज्ञ की सामग्री (अवयव) के रूप में काम आते हैं। उनके सिर तथा मुख के बाल बादलों के आगार हैं और उनके नाखून बिजली, पत्थरों तथा लौह अयस्कों के उद्गम-स्थल हैं।

श्लोक 6: भगवान् की भुजाएँ बड़े-बड़े देवताओं तथा जनसामान्य की रक्षा करनेवाले अन्य नायकों के उद्गम-स्थल हैं।

श्लोक 7: भगवान् के अगले डग ऊर्ध्व, अधो तथा स्वर्गलोकों के एवं हमें जो भी चाहिए, उसके आश्रय हैं।

उनके चरणकमल सभी प्रकार के भय के लिए सुरक्षा का काम करते हैं।

श्लोक 8: भगवान् के जननांगों से जल, वीर्य, सृष्टि, वर्षा तथा प्रजापतियों का जन्म होता है। उनके जननांग उस आनन्द के कारण-स्वरूप हैं, जिससे जनन के कष्ट का प्रतिकार किया जा सकता है।

श्लोक 9: हे नारद, भगवान् के विराट रूप का गुदाद्वार मृत्यु के नियामक देव, मित्र, का धाम है और भगवान् की बड़ी आँत का छोर ईर्ष्या,

दुर्भाग्य, मृत्यु, नरक आदि का स्थान माना जाता है।

श्लोक 10: भगवान् की पीठ समस्त प्रकार की उद्विग्नता तथा अज्ञान एवं अनैतिकता का स्थान है। उनकी नसों से नदियाँ तथा नाले प्रवाहित होते हैं और उनकी हड्डियों पर बड़े-बड़े पहाड़ बने हैं।

श्लोक 11: भगवान् का निराकार स्वरूप महासागरों का धाम है और उनका उदर भौतिक दृष्टि से विनष्ट जीवों का आश्रय है। उनका हृदय जीवों के सूक्ष्म भौतिक शरीरों का

धाम है। बुद्धिमान लोग इसे इस प्रकार से जानते हैं।

श्लोक 12: तथापि उस महापुरुष की चेतना धार्मिक सिद्धान्तों का, मेरा, तुम्हारा तथा चारों कुमारों—सनक, सनातन, सनत्कुमार तथा सनन्दन—का निवास-स्थान है। यही चेतना सत्य तथा दिव्य ज्ञान का वास-स्थान है।

श्लोक 13-16: मुझसे (ब्रह्मा से) लेकर तुम तथा भव (शिव) तक जितने भी बड़े-बड़े ऋषि-मुनि तुमसे पूर्व हुए हैं, वे, देवतागण, असुरगण,

नाग, मनुष्य, पक्षी, पशु, सरीसृप आदि तथा समस्त ब्रह्माण्डों की सारी दृश्य-अभिव्यक्तियाँ यथा ग्रह, नक्षत्र, पुच्छलतारे, सितारे, विद्युत, गर्जन तथा विभिन्न लोकों के वासी यथा गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, भूतगण, उरग, पशु, पितर, सिद्ध, विद्याधर, चारण एवं अन्य विविध प्रकार के जीव जिनमें पक्षी, पशु तथा वृक्ष एवं अन्य जो कुछ हो सकता है, सभी सम्मिलित हैं—वे सभी भूत, वर्तमान तथा भविष्य सभी कालों में भगवान् के विराट रूप द्वारा आच्छादित हैं

यद्यपि वे इन सबों से परे रहते हैं और सदैव एक बालिश्त आकार के रूप में रहते हैं।

श्लोक 17: सूर्य अपने विकिरणों का विस्तार करके भीतर तथा बाहर प्रकाश वितरित करता है। इसी प्रकार से भगवान् अपने विराट रूप का विस्तार करके इस सृष्टि में प्रत्येक वस्तु का भीतर से तथा बाहर से पालन करते हैं।

श्लोक 18: पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अमरता तथा निर्भयता के नियन्त्रक हैं और वे मृत्यु तथा भौतिक

जगत के सकाम कर्मों से परे हैं। हे नारद, हे ब्राह्मण, इसलिए परम पुरुष के यश का अनुमान लगा पाना कठिन है।

श्लोक 19: पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपनी एक चौथाई शक्ति के द्वारा समस्त भौतिक ऐश्वर्य के परम आगार के रूप में जाने जाते हैं, जिसमें सारे जीव रह रहे हैं। भगवान का धाम जो तीन उच्चतर लोकों से तथा भौतिक आवरणों से परे स्थित है उस में अमरता, निर्भयता तथा जरा और

व्याधि से चिन्तामुक्ति का नित्य निवास है।

श्लोक 20: आध्यात्मिक जगत, जो भगवान् की तीन चौथाई शक्ति से बना है, इस भौतिक जगत से परे स्थित है और यह उन लोगों के निमित्त है, जिनका पुनर्जन्म नहीं होता। अन्य लोगों को जो गृहस्थ जीवन के प्रति आसक्त हैं और ब्रह्मचर्य व्रत का कठोरता से पालन नहीं करते, तीन लोकों के अन्तर्गत रहना ही होता है।

श्लोक 21: सर्व-व्यापी भगवान् अपनी शक्तियों के कारण व्यापक अर्थों में नियन्त्रण-कार्यों के तथा भक्तिमय सेवा के स्वामी हैं। वे समस्त परिस्थितियों में अविद्या तथा विद्या दोनों के परम स्वामी हैं।

श्लोक 22: भगवान् से सारे ब्रह्माण्ड तथा समस्त भौतिक तत्त्वों, गुणों एवं इन्द्रियों से युक्त विराट रूप उत्पन्न होते हैं। फिर भी वे ऐसे भौतिक प्राकट्यों से उसी तरह पृथक् रहते हैं जिस तरह सूर्य अपनी किरणों तथा ताप से पृथक् रहता है।

श्लोक 23: जब मैं महापुरुष भगवान् (महा-विष्णु) के नाभि-कमल पुष्प से उत्पन्न हुआ था, तो मेरे पास यज्ञ-अनुष्ठानों के लिए उस महापुरुष के शारीरिक अंगों के अतिरिक्त अन्य कोई सामग्री न थी।

श्लोक 24: यज्ञोत्सवों को सम्पन्न करने के लिए फूल, पत्ती, कुश जैसी यज्ञ-सामग्रियों के साथ-साथ यज्ञ-वेदी तथा उपयुक्त समय (वसन्त) की भी आवश्यकता होती है।

श्लोक 25: यज्ञ की अन्य आवश्यकताएँ हैं—पात्र, अन्न, घी,

शहद, सोना, मिट्टी, जल, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा यज्ञ सम्पन्न करानेवाले चार पुरोहित।

श्लोक 26: यज्ञ की अन्य आवश्यकताओं में देवताओं का विभिन्न नामों से विशिष्ट मंत्रों तथा दक्षिणा के व्रतों द्वारा आवाहन सम्मिलित हैं। ये आवाहन विशिष्ट प्रयोजनों से तथा विशिष्ट विधियों द्वारा विशेष शास्त्र के अनुसार होने चाहिए।

श्लोक 27: इस प्रकार मुझे भगवान् के शारीरिक अंगों से ही यज्ञ के लिए इन आवश्यक सामग्रियों की

तथा साज-सामान की व्यवस्था करनी पड़ी। देवताओं के नामों के आवाहन से चरम लक्ष्य विष्णु की क्रमश: प्राप्ति हुई और इस प्रकार प्रायश्चित्त तथा पूर्णाहुति पूरी हुई।

श्लोक 28: इस प्रकार मैंने यज्ञ के भोक्ता परमेश्वर के शरीर के अंगों से यज्ञ के लिए सारी सामग्री तथा साज-समान उत्पन्न किये और भगवान् को प्रसन्न करने के लिए मैंने यज्ञ सम्पन्न किया।

श्लोक 29: हे पुत्र, तत्पश्चात् तुम्हारे नौ भाइयों ने, जो प्रजापति हैं,

व्यक्त तथा अव्यक्त दोनों प्रकार के पुरुषों को प्रसन्न करने के लिए समुचित अनुष्ठानों सहित यज्ञ सम्पन्न किया।

श्लोक 30: तत्पश्चात्, मनुष्यों के पिताओं यानी मनुओं, महर्षियों, पितरों, विद्वान् पंडितों, दैत्यों तथा मनुष्यों ने परमेश्वर को प्रसन्न करने के निमित्त यज्ञ सम्पन्न किये।

श्लोक 31: अतएव सारे ब्रह्माण्डों की भौतिक अभिव्यक्तियाँ उनकी शक्तिशाली भौतिक शक्तियों में स्थित हैं, जिन्हें वे स्वत: स्वीकार

करते हैं, यद्यपि वे भौतिक गुणों से नित्य निर्लिप्त रहते हैं।

श्लोक 32: उनकी इच्छा से मैं सृजन करता हूँ, शिवजी विनाश करते हैं और स्वयं वे अपने नित्य भगवान् रूप से सबों का पालन करते हैं। वे इन तीनों शक्तियों के शक्तिमान नियामक हैं।

श्लोक 33: प्रिय पुत्र, तुमने मुझसे जो कुछ पूछा था, उसको मैंने इस तरह तुम्हें बतला दिया। तुम यह निश्चय जानो कि जो कुछ भी यहाँ है (चाहे वह कारण हो या कार्य, दोनों

ही—आध्यात्मिक तथा भौतिक जगतों में) वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् पर आश्रित है।

श्लोक 34: हे नारद, चूँकि मैंने भगवान् हरि के चरणकमलों को अत्यन्त उत्कण्ठा के साथ पकड़ रखा है, अतएव मैं जो कुछ कहता हूँ, वह कभी असत्य नहीं होता। न तो मेरे मन की प्रगति कभी अवरुद्ध होती है, न ही मेरी इन्द्रियाँ कभी भी पदार्थ की क्षणिक आसक्ति से पतित होती हैं।

श्लोक 35: यद्यपि मैं वैदिक ज्ञान की शिष्य-परम्परा में दक्ष महान् ब्रह्मा

के रूप में विख्यात हूँ और यद्यपि मैंने सारी तपस्याएँ की हैं तथा यद्यपि मैं योगशक्ति एवं आत्म-साक्षात्कार में पटु हूँ और मुझे सादर प्रणाम करनेवाले जीवों के महान् प्रजापति मुझे इसी रूप में मानते हैं, तो भी मैं उन भगवान् को नहीं समझ सकता, जो मेरे जन्म के मूल उद्गम हैं।

श्लोक 36: अतएव मेरे लिए श्रेयस्कर होगा कि मैं उनके चरणों में आत्म-समर्पण कर दूँ, क्योंकि केवल वे ही मनुष्य को जन्म-मृत्यु के चक्र से उबार सकते हैं। ऐसा आत्म-समर्पण

कल्याणप्रद है और इससे समस्त सुख की अनुभूति होती है। आकाश भी अपने विस्तार की सीमाओं का अनुमान नहीं लगा सकता। अतएव जब भगवान् ही अपनी सीमाओं का अनुमान लगाने में अक्षम रहते हैं, तो भला दूसरे क्या कर सकते हैं?

श्लोक 37: जब न शिवजी, न तुम और न मैं ही आध्यात्मिक आनन्द की सीमाएँ तय कर सके हैं, तो अन्य देवता इसे कैसे जान सकते हैं? चूँकि हम सभी भगवान् की माया से मोहित हैं, अतएव हम अपनी-

अपनी सामर्थ्य के अनुसार ही इस व्यक्त विश्व को देख सकते हैं।

श्लोक 38: हम उन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को सादर प्रणाम करते हैं, जिनके अवतारों तथा कार्य-कलापों का गायन हमारे द्वारा उनके महिमा-मण्डन के लिए किया जाता है, यद्यपि वे अपने यथार्थ रूप में बड़ी कठिनाई से ही जाने जा सकते हैं।

श्लोक 39: वे परम आदि भगवान् श्रीकृष्ण, प्रथम अवतार महाविष्णु के रूप में अपना विस्तार करके इस व्यक्त जगत की सृष्टि करते

हैं, किन्तु वे अजन्मा रहते हैं। फिर भी सृष्टि उन्हीं से है, भौतिक पदार्थ तथा अभिव्यक्ति भी वे ही हैं। वे कुछ काल तक उनका पालन करते हैं और फिर उन्हें अपने में समाहित कर लेते हैं।

श्लोक 40-41: भगवान् पवित्र हैं और भौतिक क्लेश के समस्त कल्मष से रहित हैं। वे परम सत्य हैं और साक्षात् पूर्ण ज्ञान हैं। वे सर्वव्यापी, अनादि, अनन्त तथा अद्वय हैं। हे नारद, हे ऋषि, बड़े-बड़े मुनि उन्हें तभी जान सकते हैं, जब वे समस्त भौतिक लालसाओं से मुक्त हो जाते हैं

और अविचलित इन्द्रियों की शरण ग्रहण कर लेते हैं। अन्यथा व्यर्थ के तर्कों से सब कुछ विकृत हो जाता है और भगवान् हमारी दृष्टि से ओझल हो जाते हैं।

श्लोक 42: कारणार्णवशायी विष्णु ही परमेश्वर के प्रथम अवतार हैं। वे नित्य काल, आकाश, कार्य- कारण, मन, तत्त्वों, भौतिक अहंकार, प्रकृति के गुणों, इन्द्रियों, भगवान् के विराट रूप, गर्भोदकशायी विष्णु तथा समस्त चर एवं अचर जीवों के स्वामी हैं।

श्लोक 43-45: मैं स्वयं (ब्रह्मा), शिवजी, भगवान् विष्णु, दक्ष आदि प्रजापति, तुम (नारद तथा कुमारगण), इन्द्र तथा चन्द्र जैसे देवता, भूर्लोक के नायक, भूलोक के नायक, अधोलोक के नायक, गन्धर्वलोक के नायक, विद्याधरलोक के नायक, चारणलोक के नायक, यक्षों, राक्षसों तथा उरगों के नेता, ऋषि, बड़े-बड़े दैत्य, बड़े-बड़े नास्तिक तथा अन्तरिक्ष पुरुष तथा मृतक, प्रेत, शैतान, जिन्न, कूष्माण्ड, बड़े-बड़े जलचर, बड़े-बड़े पशु तथा पक्षी आदि या अन्य शब्दों में ऐसी कोई भी वस्तु जो बल, ऐश्वर्य,

मानसिक तथा ऐन्द्रिय कौशल, शक्ति, क्षमा, सौन्दर्य, विनम्रता, ऐश्वर्य तथा प्रजनन से युक्त हो, चाहे रूपवान या रूप-विहीन, वे सब भले ही विशिष्ट सत्य तथा भगवान् के रूप प्रतीत हों, लेकिन वास्तव में वे वैसे हैं नहीं। वे सभी भगवान् की दिव्य शक्ति के अंशमात्र हैं।

श्लोक 46: हे नारद, अब मैं एक-एक करके भगवान् के दिव्य अवतारों का वर्णन करूँगा, जो लीला अवतार कहलाते हैं। उनके कार्यकलापों के सुनने से कान में संचित सारा मैल हट

जाता है। ये लीलाएँ सुनने में मधुर हैं और आस्वाद्य हैं, अतएव ये मेरे हृदय में सदैव बनी रहती हैं।

* * * * * * *

श्रीलगुरुदेव